भ्रष्टाचार: सैद्धांतिक और व्यावहारिक विवेचन

डॉ. संजय लोढ़ा

भ्रष्टाचार की व्याख्याएं

कौटिल्य ने आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व अपने ग्रंथ अर्थशास्त्र में यह स्पष्ट कर दिया था कि सार्वजनिक पद का निजी लाभ के लिए दुरुपयोग ही भ्रष्टाचार है। उन्होंने यह कहा था कि भ्रष्टाचार केवल घूसखोरी नहीं है और क्योंकि इससे राज्य का विकास अवरुद्ध होता है इसलिए इसे रोकने के लिए विशेष प्रयास किए जाने अनिवार्य हैं। इसके ठीक विपरीत भ्रष्टाचार के प्रति आज एक संशोधनवादी दृष्टिकोण विकसित हो रहा है जो यह मानता है कि यह दुष्प्रवृत्ति न केवल विकास के लिए परस्पर विरोधी नहीं है अपितु कभी-कभी विकास को संवर्द्धित भी करती है। नथेनियल लेफ और फ्रांसिस लुई जैसे अर्थशास्त्री यह मानते है कि भ्रष्टाचार एकाधिकारवादी अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देता है जिससे कार्यकुशलता बढ़ती है।

आर्थिक निजीकरण और भूमंडलीकरण के दौर में भ्रष्टाचार की परिभाषा और समझ को ही अनिश्चितता का आवरण ओढ़ा दिया गया है। यह कहा जाने लगा है कि भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में इसका आशय अलग-अलग है अर्थात् पाश्चात्य देशों में जो भ्रष्ट आचरण है शायद विकासशील देशों में ऐसा नहीं होता हो। 'एशियाई टाईगर' देशों का उदाहरण दिया जाता है जहां अप्रत्याशित आर्थिक विकास के साथ ही भ्रष्टाचार भी बहुत अधिक है। इस बारे में भी संदेह प्रकट किया जा रहा है कि विभिन्न देशों में अभिजन वर्ग भ्रष्टाचार

को शायद ही समाप्त किया जा सकता है। इन अनिश्चितताओं का परिणाम यह नज़र आ रहा है कि भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष केवल आलंकारिक और उपदेशात्मक रह गया है। इस विषय पर शोध, लेखन और गंभीर चर्चा की मात्रा बढ़ गई है। तथाकथित सभ्य समाज भ्रष्टाचार से चिंतित भी बहुत है। अनेक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय गैर-शासकीय संगठन भ्रष्टाचार के मापन और विवेचन में अत्यधिक सक्रिय हो गए हैं।

लेकिन इतना सब होते हुए भी भ्रष्टाचार से जुड़े कुछ अहम सवाल अनुत्तरित हैं। भ्रष्टाचार क्यों फैलता है? यह आर्थिक विकास के लिए वरदान है या अभिशाप या फिर अप्रासंगिक है? अगर अभिशाप है, तो इसे रोकने के लिए क्या किया जा सकता है? क्या वर्तमान आर्थिक सुधार इस कार्य के लिए उपयुक्त है या फिर राज्य नियंत्रित अर्थव्यवस्था? क्या भ्रष्टाचार के खिलाफ संघर्ष स्थानीय स्तर पर होना चाहिए या फिर इसके लिए विश्व स्तरीय अभियान की आवश्यकता है? इन प्रश्नों का उत्तर खोजना आवश्यक है।

भ्रष्टाचार के कारण

लेसलि पामर ने हांगकांग, भारत और इंडोनेशिया में प्रशासकीय भ्रष्टाचार का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए इसके तीन प्रमुख कारण बताए: भ्रष्ट होने के अवसरों की उपलब्धता अर्थात् अधिकारियों का प्रशासन तथा लाभदायक गतिविधियों पर नियंत्रण; वेतन की अपर्याप्तता और भ्रष्ट अधिकारियों के खिलाफ दंडात्मक कार्यवाही की संभावना। उनकी यह मान्यता थी कि यदि भ्रष्ट होने के अवसर अनुपलब्ध हों, अधिकारियों को पर्याप्त वेतन दिया जाए और शासन सजग रहे तो भ्रष्टाचार नियंत्रित रहेगा। कुछ विद्वान निर्धनता को भ्रष्टाचार का मुख्य कारण मानते हैं। भ्रष्टाचार को एक गणितीय प्रारूप के रूप में रॉबर्ट क्लिटगार्ड के द्वारा इस तरह स्पष्ट किया गया है:

भ्रष्टाचार = निरंकुश शक्ति + निरपेक्ष स्वेच्छा — जवाबदेहिता

प्रसिद्ध उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद ने अपनी कहानी 'नमक का दारोगा' में इसी प्रारूप को सरल शब्दों में कुछ इस तरह कहा कि 'यह सब तो उनका हक है।' वर्तमान मुख्य केंद्रिय सतर्कता आयुक्त श्री एन. विट्ठल का मानना है कि जब राजनीति का अपराधीकरण हो जाए और कानून के प्रति अनादर की भावना घर कर जाए तो भ्रष्टाचार फलता-फूलता है। भारत में व्याप्त बहुमुखी भ्रष्टाचार के पांच कारणों की चर्चा उन्होंने की है (1) वस्तुओं और सेवाओं की कमी, (2) पारदर्शिता का अभाव, (3) लालफीताशाही और अतार्किक नियम तथा प्रक्रियाएं जो बहुत समय नष्ट करते हैं (4) प्रशासनिक अभिकरणों तथा न्यायिक निर्णयों द्वारा प्रदान किए गए वैधानिक संरक्षण जो इस सिद्धांत पर आधारित है कि सभी उस समय तक निर्दोष हैं जब तक कि उन्हें दोषी करार न दिया जाए और (5) विवादवाद जिसमें कि भ्रष्ट अधिकारी एक दूसरे को सुरक्षा प्रदान करते हैं। भारतीय संदर्भ में ही भ्रष्टाचार के कारणों की एक गंभीर मीमांसा प्रताप भानु मेहता के द्वारा की गई है। वे इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं है कि भ्रष्टाचार केवल सार्वजनिक पद का निजी लाभ के लिए किया गया दुरुपयोग है और अधर्मी उपभोक्तावाद इस प्रवृत्ति को जीवित रखता है। उनके अनुसार, इसकी जड़े और दुर्धेरणा उन मानवीय संबंधों की प्रकृति के गर्भ में निहित है जो एक समाज को परिभाषित करती है। मेहता यह भी रेखांकित करते हैं कि भ्रष्टाचार निजी क्षेत्र में उतना ही व्याप्त है जितना कि सार्वजनिक क्षेत्र में और इसलिए यह कहना अनुचित होगा कि राज्य को कमजोर बनाकर भ्रष्टाचार से संघर्ष किया जा सकता है।

मेहता के अनुसार भ्रष्टाचार का भारतीय संस्करण इसलिए अनूठा है क्योंकि इसमें सामाजिक स्वीकृति निहित है। भ्रष्टाचार भारतीय राज्य और समाज के उन अनुभवों से उपजता है जो व्यक्ति में अलगाव की भावना पैदा करते हैं। औसत भारतीय के लिए समाज और राज्य दोनों ही विषमतावादी, स्वेच्छाचारी, दूरस्थ और अप्राप्य हैं। जहां समाज अपनी प्रकृति से ही विषम है वहीं राज्य समतावादी संविधान के बावजूद अपने आचरण में निरंतर व्यक्ति को इस बात का एहसास दिलाता रहता है कि वह कितना निरीह, शक्तिहीन और अप्रासंगिक है। राज्य की परिधि में स्थित प्रत्येक दफ्तर और उसका अलिखित कानून उन अधिकारों को भी शासकीय स्वेच्छाचारिता पर आधारित कर देता है जो एक नागरिक को स्वतः ही प्राप्त होने चाहिए। ऐसे राज्य और समाज को व्यक्ति अपना कैसे माने जो उसी के महत्व और गरिमा को स्वीकार नहीं करता है। मेहता की मान्यता है कि इसी कारण राज्य निजी शक्ति का यंत्र

है न कि सार्वजनिक उद्देश्य का और समाज उसी को सम्मान देता है जो राज्य का इस रूप में डंके की चोट पर दुरुपयोग कर सके। जो भ्रष्ट है वो कानून से परे है और वो शक्तिशाली भी है, समाज में श्रेष्ठ भी है। जब समाज में किसी व्यक्ति के मूल्य और महत्व को उसकी योग्यता के आधार पर परखा और जाना नहीं जाता तो ऐसे व्यक्ति का भ्रष्ट होना तो स्वाभाविक है क्योंकि भ्रष्टाचार द्वारा उसे वो सब प्राप्त हो सकता है या हो जाता है जो उसे अन्यथा नहीं मिला। अतः भारत में भ्रष्टाचार उस सामाजिक और शासकीय तिरस्कार का परिणाम है जिसके द्वारा व्यक्ति दूसरों को भी तिरस्कृत कर सकता है। यदि मेहता द्वारा बताए गए मापदंड के आधार पर गत कुछ वर्षों में देश में कुकुरमुत्ते की तरह फैल रहे भ्रष्टाचार का विवेचन किया जाए तो सब कुछ इतना अस्वाभाविक नहीं लगेगा।

भ्रष्टाचार का प्रभाव

भ्रष्टाचार के कारणों के विश्लेषण के पश्चात इस बात का भी खुलासा आवश्यक है कि यह वरदान है कि अभिशाप या फिर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। भ्रष्टाचार के समर्थक या प्रयोगकर्ता यह प्रतिपादित करते है कि इससे सरकारी लालफीताशाही और गूढ़ कानूनी व्यवस्थाओं के बावजूद 'काम' कराया जा सकता है। इसे 'स्पीड मनी (Speed Money)' के रूप में देखा जाता है जो कार्य की कुशलता और गतिशीलता को बढ़ाता है। भ्रष्टाचार की उपादेयता को इस 'Grease the wheels' मान्यता से सिद्ध करने का प्रयास वास्तव में दुस्साहसपूर्ण है। लेकिन यह सोच अनेक विकृतियों से ग्रस्त है। भ्रष्ट व्यवस्थाओं में राजनेताओं और नौकरशाहों के पास अनेक स्वेच्छाचारी शक्तियां होती है जो जहां एक ओर भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है वहीं भ्रष्टाचार ऐसी शक्तियों को और अधिक प्रोत्साहित करता है। विकासशील देशों में भ्रष्टाचार विकास के स्वरूप को ही विकृत कर देता है। कहीं यह विकास कार्य की वरियताओं को अनदेखा करता है तो कहीं प्रतिस्पर्धात्मक आर्थिक ढांचे की जगह एकाधिकारवादी प्रवृत्ति को प्रोन्नत करता है। यह कहना भी गलत होगा कि भ्रष्टाचार मांग और पूर्ति की प्रक्रिया को गतिशील बनाता है। सार्वजनिक निविदा व्यवस्था में जिस पक्ष की निविदा का मूल्य सबसे कम होगा काम उसी को मिलेगा क्योंकि सबसे अधिक रिश्वत उसी के द्वारा दी गई है। लेकिन इस सोच से कई नुकसान है। जो पैसा शासकीय कोष में आना चाहिए वो विदेशी बैंकों में जमा हो जाता है। जो काम किया जाना है उसकी उत्तमता संदिग्ध होती है, स्वेच्छाचारी राजनेता या अधिकारी प्रतिस्पर्धात्मक बोली से पहले ही यह तय कर लेता है कि कार्य/ठेका किसे आवंटित करना है। ऐसे वातावरण में अनेक बार सामाजिक और आर्थिक विकास की योजनाओं का लाभ उन वंचित समूहों को नहीं मिल पाता जिनके लिए वे निर्धारित होती है। सरकारी महकमों में भ्रष्टाचार उन नौकरियों या विभागों को 'प्रिमियम' विभाग बना देता है जहां 'स्पीड मनी' की संभावना अधिक होती है। परिणाम यह होता है कि योग्यता का अपव्यय होता है और सरकारी निर्णय सार्वजनिक हित में न लेकर व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ति हेतु लिए जाते है। उदाहरणार्थ अनेक प्राथमिक विद्यालयों या स्वास्थ्य केंद्रों के स्थान पर बड़े प्रतिष्ठा या निर्माण कार्य किए जाएंगे जिनमें 'गुंजाइश' अधिक होती है चाहे उनकी उपयोगिता हो या नहीं। यह भी देखने को मिलता है कि ऐसे विभागों में काम की गति भी मंथर होती है क्योंकि रिश्वत लेने वाले और देने वालो दोनों के बीच वार्ताओं और सौदेबाजी का एक लंबा दौर चलता है। कुछ अध्ययन यह भी इंगित करते है कि ऐसे विभागों और व्यावसायियों को अधिक कार्यकर्ताओं की भी आवश्यकता पड़ती है। इतना ही नहीं भ्रष्टाचार पूंजी निवेश को भी हतोत्साहित करता है चाहे यह विदेशी हो या स्वदेशी। अतः यह स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार न तो वरदान हो सकता है और न ही यह प्रभावहीन होता है। चाहे इसका कारण कुछ भी हो परिणाम केवल विनाशक ही हो सकता है।

भ्रष्टाचार नियंत्रण

शीतयुद्धोत्तर विश्व में भ्रष्टाचार को एक अंतर्राष्ट्रीय महामारी के रूप में देखा जा रहा है। इसे न केवल राष्ट्रीय सुरक्षा और जन स्वास्थ्य के लिए अपितु लोकतंत्र और विकास की प्रमुख चुनौती माना जा रहा है। भूमंडलीकरण के दौर में स्थिति और भी भयावह हो गई है क्योंकि संस्थानीकरण के साथ ही साथ अब भ्रष्टाचार का अंतर्राष्ट्रीयकरण भी हो गया है। सूचना प्रोद्योगिकी ने विश्व स्तर पर भ्रष्ट लोगों को मिला दिया है। जो अब आतंकवादियों, सामान्य अपराधियों, माफिया गिरोहों और हथियारों तथा नशीले पदार्थों को चोर बाजारी करने वालों के साथ मिलकर अपना जाल फैला रहे

है। जाहिर सी बात है कि जब मर्ज बढ़ जाए तो इलाज भी उसी के आधार पर होना चाहिए। जिस तरह से अनेक क्षेत्रों में आज अंतर्राष्ट्रीय संधियों और संगठनों का संकलन हो रहा है उसी तरह भ्रष्टाचार को रोकने के लिए भी अंतर्राष्ट्रीय मापदंड, मानक और नियम होने चाहिए। पश्चिमी देशों में ऐसे प्रयास सफलतापूर्वक किए जा रहे हैं। इन देशों ने इंटर-अमेरिकन कन्वेंशन अगेंस्ट करप्शन पर हस्ताक्षर किए हैं। विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन, अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य संघ जैसे संस्थान इस दिशा में ठोस कदम उठा रहे हैं।

परिवर्तनशील विश्व परिस्थितियों में एक अहम् बहस यह है कि आर्थिक सुधार भ्रष्टाचार को नियंत्रित करते हैं या इसे और बढ़ावा देते हैं। रॉबर्ट लेईकेन का यह मानना है कि जहां भ्रष्टाचार का संस्थानीकरण हो जाए वहां बाजारी और प्रशासनिक सुधार और अधिक हानिकारक हो सकते हैं। शासनिक नियंत्रण शिथिल होने से अवैध आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा मिल सकता है। रॉबर्ट यह भी कहते हैं कि सुधारों से हुई वित्तीय क्षति को भरपाई के लिए नौकरशाह अन्य क्षेत्रों में नई 'सौच' वसूली करेंगे। पूर्वी यूरोप के देशों में आर्थिक सुधारों के कारण भ्रष्टाचार और भी बढ़ गया है। गत तीन चार वर्षों में भारत का अनुभव भी कुछ अलग नहीं है। दूसरी ओर आर्थिक सुधारों के पक्षधर यह मानते हैं कि आधे-अधूरे, अनियोजित तथा अपर्याप्त रूप से लागू किए गए सुधार अपने लक्ष्य के विपरीत प्रभाव डालेंगे। इनसे भ्रष्टाचार और अनियमितताएं और भी बढ़ेंगी। आंशिक सुधार वास्तव में निहित स्वार्थों को और मजबूत करेंगे और एकाधिकारवादी प्रवृत्ति को सशक्त बनाएंगे। अधिक से अधिक आर्थिक प्रतिस्पर्धा, खुलापन और प्रशासनिक सरलीकरण भ्रष्टाचार के अवसरों को सीमित करेगा। वाणिज्य, व्यापार, उद्योग और कृषि के क्षेत्रों में राज्य का न्यूनतम हस्तक्षेप न सिर्फ भ्रष्टाचार को नियंत्रित करेगा पर साथ ही साथ आर्थिक विकास को भी सुनिश्चित करेगा।

भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष में गैर शासकीय संस्थाओं की भूमिका को भी महत्वपूर्ण माना जा रहा है। ये संस्थान न केवल आर्थिक और वित्तीय अनियमितताओं के आंकड़े सुलभ कराते हैं पर साथ ही साथ सरकारों और व्यावसायिक जगत के कर्णधारों पर अनुकूल दबाव भी डालते हैं। जर्मनी में स्थित 'ट्रांसपैरेंसी इंटरनेशनल' प्रतिवर्ष अपने प्रतिवेदनों के माध्यम से यह सूचना देता रहा है कि 'करप्शन परसेप्शन इन्डेक्स' में विभिन्न राष्ट्रों की क्या स्थिति है। इसी तरह के संगठन दक्षिणी पूर्वी एशिया में भी सक्रिय हैं। यह कहा जा सकता है कि विश्व स्तर पर भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक सशक्त जनमत तैयार करने में इन संगठनों की विशेष भूमिका है। इन संगठनों ने यह स्थापित कर दिया है कि भ्रष्टाचार किसी भी देश का 'आंतरिक मामला' नहीं है। यह भी स्वीकार किया जा रहा है कि भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन लोकतंत्र के विकास के लिए आवश्यक है। अतः जिस तरह मानव अधिकारों के संरक्षण हेतु हेलसिंकि प्रपत्र और मानव अधिकारों का अंतर्राष्ट्रीय घोषणा-पत्र पारित किया गया उसी तरह एक घोषणा-पत्र भ्रष्टाचार विरोधी भी तैयार किया जाना आवश्यक है।

भ्रष्टाचार नियंत्रण का अंतर्राष्ट्रीय आयाम जितना महत्वपूर्ण है उससे भी अधिक महत्व राष्ट्रीय आयाम का है। शासकीय सुधार और सभ्य समाज की सशक्तता भ्रष्टाचार नियंत्रण की आवश्यक शर्तें हैं। मुख्य सतर्कता आयुक्त श्री एन. विट्ठल ने भारतीय संदर्भ में पांच मुख्य भ्रष्ट कार्यकर्ताओं को इंगित करते हुए अपेक्षित सुधारों की चर्चा की है। वे पांच हैं—नेता, बाबू, लाला, झोलाधारी और दादा। उनके अनुसार इन पांचों ने मिलकर भारतीय व्यवस्था को खोखला कर दिया है और सरकारी तथा गैर सरकारी तंत्र को ईमानदार तथा साफ-सुथरा बनाने के लिए तीन कदम आवश्यक हैं। पहला, नियमों तथा प्रक्रियाओं का सरलीकरण, दूसरा जन सशक्तिकरण और पारदर्शिता और तीसरा प्रभावी दंड व्यवस्था। दुर्भाग्यवश भारत में इन सभी मसलों पर चर्चा लंबे समय से हो रही है पर कोई ठोस कदम नहीं उठाये जा रहे हैं। इनसे संबंधित अनेक वैधानिक प्रस्ताव पर हमारे सांसद दोनों सदनों और संसदीय समितियों में फुटबाल खेल रहे हैं चाहे वो लोकपाल विधेयक हो, सूचना के अधिकार का विधेयक हो या फिर चुनाव सुधारों से संबंधित प्रतिवेदन हो। वर्तमान प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के भ्रष्टाचार के प्रति शून्य सहनशीलता (Zero Tolerance) की घोषणा मात्र एक छलावा बन कर रह गई है। जिस गति से अति महत्वपूर्ण मंत्रालयों में शीर्ष स्तरों पर भ्रष्टाचार के सौदों का पर्दाफाश हो रहा है उससे तो लगता है कि शून्य सहनशीलता का स्थान शून्य संवेदनहीनता ने ले लिया है और वर्तमान सरकार या तो इन सब कारगुजारियों के प्रति मूक दर्शक है या फिर सक्रिय भागीदार। जॉन क्वॉह ने

भ्रष्टाचार विरोधी उपायों का एक तर्कसंगत मॉडल बनाया है जिसे यहां प्रस्तुत करना उपयोगी होगा—

भ्रष्टाचार विरोधी उपाय

राजनैतिक नेतृत्व का संकल्प		पर्याप्त	अपर्याप्त
	सशक्त	प्रभावशाली व्यूह रचना	प्रभावहीन व्यूह रचना 2
	कमजोर	प्रभावहीन व्यूह रचना 1	निरर्थक व्यूह रचना

इस सारणी के आधार पर यह बताया जा सकता है कि भ्रष्टाचार विरोधी अभियान दो तत्वों पर निर्भर करता है—(1) व्यापकता, प्रसार और शक्ति के आधार पर उपायों की पर्याप्तता (2) भ्रष्टाचार-नियंत्रण के प्रति राजनीतिक नेतृत्व का संकल्प एवं कर्तव्य निष्ठता। यदि प्रथम तत्व उपलब्ध हो और दूसरे तत्व का अभाव हो तो भ्रष्टाचार विरोधी उपाय अपर्याप्त है। यदि दूसरा तत्व उपलब्ध हो तो प्रथम तत्व को प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन यदि दोनों ही अपर्याप्त हो तो फिर व्यूह रचना निरर्थक हो जाती है। विद्वान पाठकगण स्वयं यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि भारत की गणना किस श्रेणी में होगी। यहां यह अवश्य लिखा जा सकता है कि 1997 में ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल ने अपने वार्षिक प्रतिवेदन में उल्लेखित corruption perception Index के 1-10 अंक के स्केल में भारत को 8.12 अंक प्राप्त हुए। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि अंक जितने ज्यादा मिले देश इतना ही अधिक भ्रष्ट माना जाता है। 1998 के प्रतिवेदन में इसी Index में उल्लेखित 85 देशों की सूची में भारत 66 वें स्थान पर था और 1999 में जब अंकों की गिनती विपरीत दिशा में की गई तो भारत को 10 में से 2.9 अंक मिले।

हमें यह स्वीकार करना होगा कि भ्रष्टाचार का भारत में न केवल संस्थानीकरण हो गया है पर भ्रष्टाचार स्वयं में ही एक संस्थान बन गया है जिसकी जड़ें बहुत गहरी है, जिसका स्वरूप व्यापक और बहुमुखी है। पर क्या कुछ नहीं किया जा सकता? क्या हम यह मान लें कि एक राष्ट्र या संस्कृति के रूप में हमारी सोच, दृष्टि और मानसिकता भी भ्रष्ट हो गई है? या हम यह कहकर संतोष कर लें कि चूंकि भ्रष्टाचार अपने स्वरूप में विश्वव्यापी है इसलिए जैसा सब जगह होगा वैसा ही यहां पर भी होगा? या फिर हम यह सोचकर खुश हो जाएं कि भ्रष्टाचार ही सामाजिक पूंजी के पुनः वितरण का सर्वाधिक उपयुक्त साधन है? ये सभी बातें हमारे निराशावाद को प्रदर्शित करती है। यदि भ्रष्टाचार सर्वत्र है तो संघर्ष और सुधार भी उतना ही प्रभावी होना चाहिए। जहां एक ओर आवश्यक कानून पारित किए जाने चाहिए वहीं जन संगठनों और जन आंदोलनों को और भी सशक्त करना जरूरी है। राजस्थान में सूचना का अधिकार विधेयक एक जन आंदोलन का ही परिणाम था जिससे भ्रष्टाचार के प्रति दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्र में जागरूकता में अभिवृद्धि हुई है। इस अनुभव का लाभ सारे राष्ट्र को हासिल हो सकता है। यह अनुभव हमें फिर से वो पंक्तियां याद दिलाता है—**"कौन कहता है कि आसमान में सूराख नहीं हो सकता है, तबियत से एक पत्थर तो फेंको यारो।"**

संदर्भ सूची

(1) *Seminar* (2001) Our corrupted core, June, Issue No. 502.

(2) Mehta, Pratap B. *Corruption as Empowerment*, The Hindu, August 11,2001.

(3) Vittal, N; Zero *tolerance to corruption* I-II, The Hindu, November 22-23, 1999.

(4) Leiken, Robert. S. (1997). *Controlling the Global Corruption Epidemic*. Foreign Policy, winter 1996-97, pp. 55-73.

(5) Kaufman, David (1997) *Corruption: The facts. Foreign Policy Summer* 1997, pp 114-131.

(6) Quah, Jon, S.T. (1999) Corruption in Asian Countries, *Public Administration Review*, November-December, 1999 Vol. 59, No. 6, pp. 483-494.

(7) Narainswamy N; and others (ed.) (2000). *Corruption at the Grassroots: The Shades and shadows* Concept publishing, New Delhi.

(8) Palmer, Leslie (1985). *The Control of Bureaucratic Corruption Case Studies in Asia*. Allied Publisher New Delhi.

(9) Klitgaard, R. (1985). *International Cooperation against Corruption*, Span, Sept. October, pp 38-41.

(10) Klitgaard R. (1988) *Controlling Corruption*, Berkeley University of California Press.